## पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–२ A

प्रश्न :– माताजी! एक प्रश्न है कि दृष्टि के विषयभूत ज्ञायक आत्मा का आश्रय करके पर्याय में चिन्मात्र अर्थात् द्रव्य–गुण–पर्याय तीनोंसे एक ज्ञानमात्र आत्मा ऐसे अभेद आत्मा का जो अनुभव हुआ, जिसमें राग भी नहीं है और भेद भी नहीं है। कर्ता–कर्म का भेद भी छूट गया और राग भी नहीं है। ऐसे आत्मा का जो अनुभव हुआ वह आत्मा शुद्धनय का विषय गिना जाय?

समाधान :– शुद्धनय का विषय है उसमें भेद नहीं पड़ता। द्रव्य–गुण–पर्याय ऐसे भेद नहीं पड़ते। वह विषय शुद्धनय का है। उसका अनुभव हुआ, स्वानुभूति हुई, जो भी कहो वह सब शुद्धनय का विषय है।

प्रश्न :– शुद्धनय का विषय है तो वह आश्रय करनेयोग्य कहा जाय अथाव दृष्टि का विषय और इसमें कोई अन्तर है कि एक ही है?

समाधान :– जो दृष्टि का विषय सविकल्प दशा में था, वही दृष्टि का विषय स्वानुभूति में है। उसमें विकल्प छूट गये हैं। उसका विषय वही है, विषय नहीं बदला। सविकल्पदशा में जिस द्रव्य को विषय किया था, वही विषय उसे स्वानुभूति में है। उसका ध्येय, उसकी जो दृष्टि है वह तो वही है, लेकिन उसका वेदन स्वानुभूति में, निर्विकल्परूपसे स्वानुभूति का वेदन होता है। और वह वेदन उसे ज्ञान में सब ग्रहण होता है। उसके गुण, उसकी पर्याय, उसके ज्ञान में सबकुछ ज्ञात होता है। उसका वेदन होता है। विषय एक मुख्यरूपसे द्रव्य आश्रय है उसका है। सब उसमें ज्ञात होता है। विकल्प नहीं है। सहजरूपसे जो मुख्य है वह मुख्य ही है और जो सबकुछ वेदन में है वह वैसे ही है। वह निर्विकल्परूपसे है।

प्रश्न :– दृष्टि का विषय अभेद आत्मा था। दृष्टिने अभेद आत्मा का आश्रय किया और अनुभव हुआ। अनुभूति में द्रव्य, गुण और पर्याय–चेतनद्रव्य, चैतन्यगुण ऐसा भेद भी छूट गया, कर्ता–कर्म का भेद भी विलीन हो गया, ज्ञाता–ज्ञेय, ध्याता–ध्येय सब भेद छूट गये। चिन्मात्र आत्मा ऐसा उसे अनुभव हुआ। तो वह शुद्धनय का विषय कहें। शुद्धनय का विषय कहें तो वह आलम्बन का विषय कहें तो वह सही है कि नहीं?

समाधान :– आलम्बन का विषय मुख्यरूपसे एक द्रव्य है। यह सब उसके वेदन में है। चिन्मात्र है। भले वह शुद्धनय का विषय कहा, यहाँ जो स्वानुभूति का शुद्धनय कहने में आता है वह परिणति सहित को शुद्धनय कहो या स्वानुभूति कहो, सब ऐसा कहकर कहने में आता है कि वह शुद्धनय। और अकेले द्रव्य का आश्रय करके शुद्धनय कहने में आता है कि द्रव्य को ही विषय करता है, शुद्धनय दृष्टि का विषय है, वह दूसरे प्रकारसे

है और यह परिणति सहित जो शुद्धनय है, इसप्रकार उसे स्वानुभूति कहो या शुद्धनय कहो या सबकुछ ऐसे कहने में आता है। उसमें द्रव्य–गुण–पर्याय अभेद यानी उसे चिन्मात्र, अकेला चैतन्यमात्र रह गया यानी उसमें द्रव्य और पर्याय कुछ नहीं है और अकेला द्रव्य रह गया ऐसा नहीं है। उसमें गुण–पर्याय सब है और ज्ञान में सब ज्ञात होता है। विषय तो जैसा है वैसा ही है। विषय छूट नहीं जाता। जो मुख्यरूपसे द्रव्य है वह वैसे ही है और गुणों और पर्याय सब उसे जैसे हैं वैसा उसे वेदन में आता है। चिन्मात्र है। अकेला चिन्मात्र चिन्मात्र हो गया यानी वह चिन्मात्र–अकेला चैतन्यरूप है। उसमें दूसरे विभाव का रूप नहीं है, विकल्प का रूप नहीं है, कुछ नहीं है। अकेला द्रव्य और उसके अनन्त गुण और उसकी पर्यायें, अकेला चैतन्य ही है इसलिये चिन्मात्र कहने में आता है।

सिद्ध भगवान अकेले चैतन्यरूप परिणमित हो गये, पूर्ण वीतरागरूप परिणमित हो गये। तो उसमें उनके द्रव्य, गुण और पर्यायें सबकुछ है। उसमें अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें, अनन्त आनन्द आदि सब है। लेकिन वह सब शुद्धनय का विषय कहने में आता है। लेकिन वह शुद्धनय परिणतिपूर्वक का कहने में आता है। उसकी दृष्टि का विषय तो एक द्रव्य का ही आश्रय है। सब शुद्ध हो गया इसलिये वह शुद्धनय है ऐसा कहने में आता है।

प्रश्न :– माताजी! उसका यह अर्थ हुआ कि शुद्धनय का विषय तो हुआ, फिर भी दृष्टि का विषय और यह शुद्धनय का विषय जो अभी हुआ, उसमें अन्तर है। दृष्टि का विषय तो केवल ज्ञायक कि जो अनन्त गुण का पिण्ड एक अभेद आत्मा है।

समाधान :– अकेला अभेद आत्मा है। उसमें उसे जो स्वानुभूतिरूपसे वेदन होता है वह विशेषरूपसे होता है। सविकल्प दशा में वह स्वानुभूति नहीं है। उसे अमुक प्रकारसे स्थिरता है, लीनता है, समाधि है। स्वानुभूति में विशेष होती है। और वह उसे ज्ञान में सब ज्ञात होता है। जानना का कार्य ज्ञान करता है, दृष्टि एक ध्येय रखती है। एक वस्तु को ध्येय में रखती है कि वस्तु मुख्य असली स्वरूप क्या है, उसे ध्येय में, दृष्टि एक ध्येय में रखती है और सब जानने का कार्य ज्ञान का है। ज्ञान दृष्टि को जानता है, ज्ञान स्वयं को जानता है, ज्ञान सब गुणों को जाने, ज्ञान सभी पर्यायें जाने, सब ज्ञान करता है।

प्रश्न :– माताजी! उसका अर्थ यह हुआ कि ... दृष्टि के विषय को ध्येय बनाकर एकाग्रता का प्रयत्न करे उसमें जबतक द्रव्य, गुण और पर्याय ऐसा भेद भी लक्ष्य में रहे तबतक उसे एकाग्रता नहीं होती। अर्थात् एक जाननेवाला ही है, जबतक ज्ञान में भी ऐसा अनुभव नहीं होता, एक जाननेवाला है उस रूप, तबतक उसमें भेद पड़ते हैं और भेद पड़ते हैं इसलिये अनुभव नहीं हो सकता। तो उसका अर्थ यह हुआ कि दृष्टि में ज्ञायक ध्रुव को लेकर ज्ञान में भी उसे अभेद अनुभव करने का प्रयत्न करना, एक जाननेवाला ही है, इसप्रकार ज्ञान में अभ्यास नहीं करे वह अलग बात है, भेद करके अभ्यास न करे, द्रव्य–गुण–पर्याय सब भेदों को जैसा है वेसा जान लिया, लेकिन अब उस अनुभवने का काल अथवा ध्यान

का काल है तब तो ज्ञान में भी यह एक ज्ञान ही है..

समाधान :- भेद पड़े, द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद पड़े, वह भेद विकल्प जो पड़ते हैं वह राग के कारण पड़ते हैं। ज्ञान को जानना नहीं छोड़ना है, राग के कारण भेद पड़ते हैं, उस रागसे छूटे तो वह राग, विकल्प छूट जाते हैं। जानना नहीं छूटता। यह गुण है और यह गुणी है, ऐसा भेद रागमिश्रित ज्ञान है इसलिये ऐसा भेद उसमें आता है कि मैं यह ज्ञायक हूँ, यह पर्याय है, यह अधूरी पर्याय, इतनी साधक की पर्याय, यह राग की पर्याय, यह भेदज्ञान की धारा वर्तती है, ये सब जो ज्ञान में जानने में आता है, वह ज्ञान का जानने का मैं छोड़ दूँ, ऐसे नहीं। राग छूट जाये तो सहज ही ज्ञान का रागमिश्रितपना है वह छूट जाता है। ज्ञान का जो जानने का है वह गुण और पर्याय जानना तो स्वानुभूति में भी रहता ही है। वह जानना नहीं छूटता, लेकिन राग छूट जाता है। दृष्टि का विषय एक द्रव्य का आलम्बन किया, उसका आश्रय किया, उसका आश्रय किया फिर ज्ञान में भी यह सब एक ही ध्यान में ले ऐसा नहीं है। रागसे छूटकर स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करता है। यह जानूँ नहीं ऐसे नहीं, ये राग की जो अस्थिरता होती है उपयोग बाहर जानेसे, कभी कोई विकल्प आता है, कभी कोई विकल्प आता है, राग के कारण, द्वेष के कारण अनेक प्रकार के शुभ विकल्प भी आते हैं, अनेक जानने के विकल्प आते हैं, उस विकल्पसे छूटकर बस, अब बहुत हुआ, अब मैं मेरे स्वरूप में स्थिर हो जाऊँ। इसलिये स्वयं को दृष्टि के विषय में यह आत्मा जो है उसे एक को ध्येय किया, उस ध्येय में स्थिर हो जाऊँ। विकल्पसे छूटना चाहता है। विकल्पसे छूटे उसमें उसे सहज ही जानना (होता है), भेदरूप खण्ड खण्ड जानता है वह सहज ही छूट जाता है। रागसे छूटता है इसलिये रागमिश्रित जानना छूट जाता है। लेकिन जब अन्दर जाता है वहाँ विकल्प छूट जाते हैं। निर्विकल्प दशा में उसका जानना छूट नहीं जाता। जानना जो होता है उसे छोड़ने का प्रयत्न नहीं लेकिन रागसे छूटने का प्रयत्न है। जानना नहीं छूटता। जानना छूटे तो शून्यता हो जाये। जानना नहीं छूटता लेकिन रागसे छूटकर और आकुलव्याकूल होता था वह स्वरूप में स्थिर होता है। यह आत्मा है वही मैं हूँ, बाकी कुछ भी मैं नहीं, यह आत्मा ही सुखरूप है। ऐसे विकल्प नहीं, सहज ही उसे आत्मा में शान्ति लगती है। बाहर के अनेक प्रकारे रागमिश्रित विकल्पसे छूटकर, यह गुण है, यह गुणी है, ये सब श्रुत की उपाधि कही जाती है। श्रुत की जो उपाधि है उससे भी छूटकर, विकल्प सहित है इसलिये रागमिश्रित है, इसलिये वह ज्ञान नहीं छूटता, राग छूट जाता है। अन्दर स्थिर होता है इसलिये अन्दर में आकूलतासे छूटकर स्वरूप में लीन होता है इसलिये विकल्प छूट जाते हैं। विकल्प छूट जाते हैं इसलिये स्वरूप की स्वानुभूति में स्वयं को जानता है, गुणों को जानता है, अपने आनन्द को जानता है, सब को जानता है। इसप्रकार भेद करके विकल्प करके नहीं जानता, सहज ही जानने में आता है।

कहते हैं न, श्रुत की उपाधि को भिन्न जानिये। उपाधि यानी रागमिश्रित है इसलिये उससे छूटता है। जो कोई द्रव्य–गुण–पर्याय का विचार है, शुक्लध्यान होता है तो द्रव्य–गुण–पर्याय के विचार होते हैं तो भी उसमें वह रागमिश्रित है। इसलिये उसमें भी खण्ड खण्ड होता है, इसलिये अधिक स्थिर होता है। फिर एक पर स्थिर होता है। फिर जब ऐसा शुक्लध्यान जमता है तब उसे केवलज्ञान प्रगट होता है। उसमें ज्ञान नहीं छूटता, लेकिन राग छूटता है। वीतराग दशा की प्राप्ति होती है इसलिये केवलज्ञान प्राप्त होता है। राग छूटकर वीतरागता होती है उसके साथ ज्ञान को सम्बन्ध है, ज्ञान निर्मल होता है। जब स्वानुभूति में जाता है तब उसका ज्ञान निर्मलता को प्राप्त होता है। जितने अंश में वीतरागता होती है उतने अंश में ज्ञान निर्मल होता है। बाहर में क्षयोपशम ज्ञान खण्ड खण्ड होता है। एक–एक ज्ञेय को जानने के लिये रुकता है। इसलिये उसपर ध्याने के बजाय रागसे छूटना। अपनी आसक्ति के कारण स्वयं कहीं न कहीं रुकता है। आगे बढ़ नहीं पाता। पहले श्रुत के विचार जानने के लिये सब आते हैं। ज्ञानस्वभाव आत्मा का निर्णय करके फिर मति–श्रुत का उपयोग अन्दर ले जाता है। इसलिये बाहर जो उपयोग जाता था उस उपयोग को अपने स्वरूप में लीन करता है। इसलिये जानना छोड़ दूँ ऐसे नहीं, उपयोग पलटता है। जो उपयोग रागमिश्रित उपयोग बाहर जाता है उस उपयोग को स्वसन्मुख होकर, मैं यह चैतन्य ही हूँ, फिर गुणभेद के, पर्यायभेद के या अल्प–पूर्ण पर्याय के किसी भी प्रकार के विचार नहीं करके स्वरूप में स्थिर होता है। उस वह आकूलता लगती है। मेरे स्वरूप में मैं स्थिर होउँ। इसलिये उसे विचार करना और वह सब जानना सहज ही छूट जाता है। रागमिश्रित है इसलिये सहज ही छूट जाता है। और स्वरूप जो दृष्टि का ध्येय है उसप्रकारसे खुद उसमें स्थिर होता है, उसमें जम जाता है। पहले उसने दृष्टि को विषय किया था, जो आत्मा का विषय करती है कि यह स्वरूप है वही मैं हूँ, उसे ध्येय में रखा कि चाहे कोई भी कार्य हो उसमें ध्येय को चूकना नहीं है। आत्मा का आश्रय नहीं छोड़ता। आश्रय नहीं छोड़ता और फिर अधिक आगे बढकर उसमें स्थिर हो जाता है। राग की आकुलतासे अन्दर स्थिर हो जाता है। इसलिये स्थिर होने के कारण विकल्प छूट जाते हैं। इसलिये जानने के लिये जो चारों ओर उपयोग घुमता था वह उपयोग अपने स्वरूप में जाता है। सहज ही उपयोग को पलटता है।

प्रश्न :– सहज ही उपयोग पलटता है और जानने में भेद का लक्ष्य छूट जाता है।

समाधान :– भेद का लक्ष्य छूट जाता है। जानने में भेद पर लक्ष्य था वह छूट जाता है। राग छूटे तो वह भेदवाला उपयोग पलटता है। जबतक राग बाहर है तबतक उपयोग बाहर ही जाता है। उसका राग बाहरसे मन्द पड़े तो वह अन्दर जाता है। इसलिये स्वयं की ओर उपयोग को लीन करता है, स्थिर करता है। तो विकल्प छूटकर उसे निर्विकल्प दशा होती है।

प्रश्न :– उपयोग स्थिर करता है वहाँ उसका अभिप्राय राग छोड़ने का है।

समाधान :- अभिप्राय राग छोड़ने का है।

प्रश्न :- फिर ज्ञान स्वसन्मुख होता है तब भेद का लक्ष्य छूट जाता है।

समाधान :- भेद का लक्ष्य सहज ही छूट जाता है। आचार्यदेव कहते हैं न, बहुत कहा, बहुत बात हो गई, बस, अब बस होओ। अन्दर स्वरूप में लीन होओ। जो जानने की ओर उपयोग था उसके साथ राग आता है इसलिये खण्ड खण्ड होता है। उससे आकूलता होती है इसलिये स्वरूप में स्थिर होता है।

प्रश्न :- निर्विकल्प अनुभव के समय ऐसे ले सकते हैं कि ज्ञान का अवलम्बन तो ज्ञायक का ही है, लेकिन द्रव्य-गुण-पर्याय आदि जानना, यह अवलम्बन रखकर सब जानता है।

समाधान :- श्रद्धाने आश्रय द्रव्य का लिया है, वैसा ज्ञानने भी आश्रय लिया है। लेकिन उसका कार्य सब जानने का है। ज्ञान के आश्रय में भी द्रव्य है और दृष्टि के आश्रय में भी द्रव्य है। उसमें लीनता भी (है), जो लीन होता है वह स्वरूप का आश्रय लेकर लीनता करता है। लेकिन ज्ञान का स्वभाव जानने का है। यदि जानने का स्वभाव नहीं हो तो वेदन को जाने कौन? स्वानुभूति को जाने कौन? स्वानुभूति खुद स्वयं को नहीं जानती, ज्ञान उसे जानता है। ज्ञान सब को जानता है। उसका जानने का स्वभाव है। ज्ञान स्वयं द्रव्य को जानता है, द्रव्य का आश्रय करता, ज्ञान गुणों को जानता है, ज्ञान पर्यायों का जानता है, ज्ञान सबको जानता है। निर्विकल्प दशामेंसे बाहर आता है तो भी स्वानुभूति हुई वह सब ज्ञान जानता है, विवेक करता है। बाहर आने के बाद भी किसप्रकार के विचार और किसप्रकार अन्दर स्वरूप में लीन हुआ, वह सब ज्ञान जानता है। दृष्टि एक आश्रय करती है, ज्ञान भी आश्रय करता है।

जब तक अन्दर में भेदज्ञान और दृष्टि का आश्रय जोरदार नहीं होता, उसका आश्रय दृष्टि में जोरदार नहीं होता तबतक वह ज्ञान में भी जोरदार नहीं होता। और तबतक स्थिर नहीं हो सकता। अन्दर भेदज्ञान हो कि मैं इन सब रागसे, इन सब विल्पोंसे भिन्न-न्यारा ज्ञायक हूँ, इसप्रकार उसे अन्दरसे श्रद्धा का ज़ोर आये कि मैं एक ज्ञायक हूँ, तो उससे भिन्न हो और स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे। उसे प्रयोजन का, कितनों को ही अन्दर इतनी लगनी लगती है कि मूल प्रयोजनभूत जान लिया, बस, अब स्वरूप में स्थिर हो जाना है। एक आत्मा का प्रयोजन साधना है। इसलिये आत्मा का आश्रय लेकर स्वरूप में स्थिर होने का प्रयत्न करे, उपयोग बाहर जाता हो उसे अंतर में आता है। उसमें यदि उसका पुरुषार्थ यथार्थ हो और यदि यथार्थ हो तो उसे विकल्प छूटकर निर्विकल्प दशा की प्राप्ति होती है। लेकिन वह धारावाही, शास्त्र में आता है न? छह महिने ऐसा धारावाही अभ्यास तू कर, दृष्टि का आश्रय करके उसप्रकार की भेदज्ञान की दशा अन्दरसे प्राप्त कर और यदि सहजरूपसे तेरी धारा हो तो अन्दर निर्विकल्प दशा और स्वानुभूति हुए बिना रहेगी नहीं,

ऐसा आचार्यदेव कहते हैं। उपयोग अन्तर में लाने को आचार्यदेव कहते हैं, मति–श्रुत का उपयोग, अर्थात् उसका राग छूटे तो उपयोग अन्दर आये न? राग छूटे बिना उपयोग अन्दर आता नहीं।

## पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा–सी.डी.–२ B

प्रश्न :–: ..आप समजायेंगे? अथवा सर्वथा पर को नहीं जानता ऐसा कहें तो बराबर है कि नहीं?

समाधान :– छठवी गाथा में कहाँ ऐसा आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव के प्रवचन में आता है, पर को जानता नहीं।

समाधान :– और दूसरी गाथा में? प्रवचन में आता है?

प्रश्न :– गुरुदेव की कैसेट है उसमें एक वाक्य आता है कि पर को जानता नहीं। और दूसरी गाथा में अमृतचंद्राचार्य की टीका है उसमें लिखा है कि पर को जानता नहीं ऐसा यदि मानेगा तो तुझे मिथ्यात्व है।

समाधान :– सब अपेक्षा हैं। पर को जानता नहीं यानी पर में एकत्व नहीं होता। पर को जानता नहीं यानी कि स्वयं का जो ज्ञानस्वभाव है वह ज्ञान ज्ञानरूप परिणमित होता है। पर में एकत्व होता नहीं यानी कि वह पर को जानता नहीं, लेकिन अपना ज्ञान परिणमित होता है, ऐसा कहना चाहते हैं। और पर को नहीं जानता (ऐसा मानेगा तो) मिथ्यात्व है। ज्ञान स्वभाव खुद का ही है तो ज्ञान सर्व को जानता है। ज्ञान ऐसा नहीं है कि पर को नहीं जाने। ज्ञान तो लोकालोक को जानता है। इसलिये ज्ञान जानता नहीं ऐसा माने कि.... छह द्रव्य जगत में है, द्रव्य–गुण–पर्याय, दूसरे अनंत द्रव्य हैं सर्व को ज्ञान जानता तो है। इसलिये नहीं जानता है ऐसा सर्वथा माने तो–तो मिथ्यात्व है। ज्ञान का स्वभाव है जानना।

नहीं जानता है अर्थात् पर में एकत्व होता नहीं। स्वयं ज्ञानरूप ही रहता है। ज्ञान, ज्ञान का स्वभाव है जानना। इसलिये सहज जानता है। ज्ञान स्वयं सहज स्वभावरूप परिणमता है, ज्ञानरूप। वह ज्ञान ज्ञान को जानता है, ऐसा वहाँ कहना है। अर्थात् ज्ञान ज्ञेय को जानता नहीं ऐसा उसका अर्थ नहीं है। उसकी अपेक्षा समझनी चाहिये।

प्रश्न :– छठवीं गाथा में किस अपेक्षासे वहाँ कहना चाहते हैं? पर को जानता नहीं है तो वहाँ कौनसी अपेक्षा है?

समाधान :– अपेक्षा यह है कि ज्ञान ज्ञानरूप परिणमता है। ज्ञान ज्ञान को जानता है,